आपका दिमाग कंप्यूटर नहीं है

रॉबर्ट एपस्टीन

चाहे जितना ज़ोर लगा लें, मगर मस्तिष्क वैज्ञानिकों और संज्ञान मनोवैज्ञानिकों को बीथोवन की पाँचवीं सिम्फनी की प्रतिलिपि दिमाग में ढूँढ़े नहीं मिलने वाली। और न ही उन्हें दिमाग में शब्दों, चित्रों, व्याकरण के नियमों या अन्य किसी भी किस्म के पर्यावरणीय उद्दीपनों (environmental stimuli) के दर्शन होंगे। अलबत्ता, यह तो पक्का है कि मानव मस्तिष्क खाली नहीं होता। मगर उसमें वे सारी चीज़ें नहीं भरी हैं जो लोगों को लगता है कि भरी होंगी। उसमें 'याददाश्त' जैसी सीधी-सादी चीज़ें भी नहीं हैं।

मस्तिष्क एक कम्प्यूटर

मस्तिष्क को लेकर हमारे गड्ड-मड्ड सोच की जड़ें इतिहास में देखी जा सकती हैं। मगर 1940 के दशक में कंप्यूटरों के आविष्कार ने हमें खास तौर से भ्रमित किया है। पिछली आधी सदी से भी अधिक समय से मनोवैज्ञानिक, भाषा वैज्ञानिक, तंत्रिका वैज्ञानिक और मानव व्यवहार के अन्य विशेषज्ञ दावा करते आ रहे हैं कि हमारा मस्तिष्क कंप्यूटर की तरह काम करता है।

शिशुओं के मस्तिष्क पर गौर करेंगे

तो साफ हो जाएगा कि यह विचार कितना खोखला है। जैव-विकास की बदौलत, अन्य समस्त स्तनधारी प्राणियों के समान इन्सानी नवजात शिशु भी दुनिया से कारगर ढंग से निपटने की तैयारी के साथ जन्म लेते हैं। शिशु की नज़र थोड़ी धुँधली होती है मगर वह चेहरों पर विशेष रूप से ध्यान देता है और जल्दी ही माँ का चेहरा पहचानने लगता है। वह गैर-वाणी ध्वनियों की अपेक्षा वाणियों को ज़्यादा तरजीह देता है और बुनियादी वाणी-ध्वनियों को एक-दूसरे से अलग-अलग पहचानना सीख जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम सामाजिक कड़ियाँ जोड़ने के लिए बने हैं।

एक तन्दुरुस्त नवजात शिशु एक दर्जन से ज़्यादा अनुवर्ती क्रियाओं (रिफ्लेक्सेस) के साथ पैदा होता है। ये ऐसे कुछ उद्दीपनों के प्रति तैयारशुदा प्रतिक्रियाएँ होती हैं जो शिशु के ज़िन्दा रहने के लिए महत्वपूर्ण हैं। कोई भी चीज़ उसके गाल को स्पर्श करे तो वह उस ओर अपना सिर घुमाता है और कोई भी चीज़ उसके मुँह में जाए, तो उसे चूसता है। पानी में डुबाए जाने पर वह अपनी साँस रोक लेता है। हाथ में दी गई चीज़ को इतना कसकर पकड़ता है कि वह अपने वज़न को सहारा दे सकता है। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि नवजात शिशु सीखने की एक सशक्त क्रियाविधि के साथ पैदा होते हैं। यह उन्हें तेज़ी से बदलने में मदद करती है ताकि वे अपनी दुनिया के साथ अधिक-से-अधिक कारगर ढंग से आदान-प्रदान कर सकें, चाहे वह दुनिया उस दुनिया से सर्वथा अलग क्यों न हो, जिसका सामना उनके दूरस्थ पूर्वजों ने किया था।

संवेदना, अनुवर्ती क्रियाएँ और सीखने की क्रियाविधि - हम शुरुआत इन्हीं के साथ करते हैं। और विचार करें, तो यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। यदि जन्म के समय हमारे पास ये क्षमताएँ न होतीं, तो हमारा जीवित रहना मुश्किल होता।

एक भ्रामक रूपक

मगर कई चीज़ें हैं जो जन्म के समय हमारे पास नहीं होतीं - सूचनाएँ, डेटा, नियम, सॉफ्टवेयर, ज्ञान, शब्द भण्डार, प्रस्तुतीकरण (निरूपण), एल्गोरिद्म (सूत्रविधियाँ), प्रोग्राम, मॉडल्स, यादें, छवियाँ, प्रोसेसर्स, सबरूटिन्स, कूट-निर्माण क्षमता (एनकोडर्स), कूट-तोड़ क्षमता (डीकोडर्स), संकेत, या बफर्स। ये डिज़ाइन के तत्व हैं जो कंप्यूटरों को कुछ हद तक बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार दर्शाने की क्षमता देते हैं। हम न तो इन चीज़ों के साथ पैदा होते हैं, और न ही आगे चलकर इनका विकास होता है - कभी भी नहीं।

हम शब्दों का भण्डारण नहीं करते और न ही इन शब्दों के साथ खेलने के नियमों का। हम दृश्य उद्दीपनों के प्रतीकात्मक निरूपण तैयार करके उन्हें लघु-अवधि की स्मृति बफर में

सहेजकर उन्हें दीर्घावधि स्मृति उपकरणों में स्थानान्तरित नहीं करते। हम स्मृति के रजिस्टर में से सूचनाओं या शब्दों या छवियों को पुनःप्राप्त नहीं करते। कंप्यूटर ये सारे काम करता है, मगर जीवधारी नहीं करते।

कंप्यूटर सूचनाओं - संख्याओं, अक्षरों, शब्दों, सूत्रों, छवियों वगैरह - को प्रोसेस करते हैं, शब्दशः। सबसे पहले सूचना को एक ऐसे स्वरूप में कूटबद्ध करना पड़ता है जिसका उपयोग कंप्यूटर कर सके - अर्थात् 'एक' और 'शून्य' के पैटर्न (बिट्स) जिन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों (बाइट्स) में व्यवस्थित किया जाता है। मेरे कंप्यूटर में प्रत्येक बाइट 8 बिट्स से बना होता है। और इन बिट्स का एक विशेष पैटर्न अक्षर 'd' का, कोई अन्य पैटर्न 'o' तथा कोई पैटर्न 'g' का प्रतिनिधित्व करता है। मेरे डेस्कटॉप पर एक छोटी-सी तस्वीर - जैसे मेरी बिल्ली का फोटो - इस तरह के लाखों-करोड़ों बाइट्स के एकदम विशिष्ट पैटर्न द्वारा प्रस्तुत की जाती है (दस लाख बाइट का एक मेगाबाइट होता है)। इस पैटर्न के आसपास कुछ विशेष संकेत होते हैं जो कंप्यूटर को बताते हैं कि वह एक तस्वीर है।

कंप्यूटर्स इलेक्ट्रॉनिक घटकों में उकेरे गए इन पैटर्न को विभिन्न भौतिक भण्डारण उपकरणों में सचमुच यहाँ से वहाँ स्थानान्तरित करते हैं। कभी-कभी वे पैटर्न की प्रतिलिपि भी बनाते हैं और कभी-कभी नाना प्रकार से उनमें फेरबदल भी करते हैं। जैसे, जब हम किसी पाण्डुलिपि में गलतियाँ सुधारते हैं या किसी फोटोग्राफ में 'टचिंग' करते हैं। इस तरह डेटा के विन्यास के स्थानान्तरण, प्रतिलिपि बनाने और कामकाज करते समय कंप्यूटर जिन नियमों का पालन करते हैं वे भी कंप्यूटर में सहेजे गए होते हैं। कई सारे नियमों के समूह को 'प्रोग्राम' या 'एल्गोरिद्म' (सूत्रविधि) कहते हैं। सूत्रविधियों का एक समूह जो एक साथ मिलकर हमें कोई काम करने (जैसे स्टॉक खरीदने या ऑनलाइन डेट तलाश करने) में मदद करता है उसे 'एप्लीकेशन' कहते हैं - जिसे आजकल अधिकांश लोग 'ऐप' कहते हैं।

कंप्यूटिंग के इस लम्बे परिचय के लिए मुझे क्षमा करें, मगर मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँः कंप्यूटर वास्तव में विश्व के एक प्रतीक-आधारित प्रस्तुतीकरण पर काम करते हैं। वे वास्तव में भण्डारण और पुनःप्राप्ति करते हैं। वे वास्तव में प्रोसेस करते हैं। उनमें वास्तव में भौतिक स्मृतियाँ होती हैं। वे जो कुछ भी करते हैं निरपवाद रूप से एल्गोरिद्म के निर्देशानुसार करते हैं।

दूसरी ओर मनुष्य ऐसा नहीं करते - न कभी किया है और न कभी करेंगे। इस हकीकत के रूबरू पता नहीं क्यों कई सारे वैज्ञानिक हमारे मानसिक जीवन की बातें ऐसे करते हैं मानो हम कंप्यूटर हों।

'मस्तिष्क एक मशीन' सोच का इतिहास

अपनी पुस्तक 'इन अवर ओन इमेज' (हमारी अपनी छवि, 2015) में कृत्रिम बुद्धि विशेषज्ञ जॉर्ज ज़ार्डाकिस ने छः अलग-अलग रूपकों (metaphors) का विवरण दिया है जिन्हें लोगों ने पिछले 2000 वर्षों में मानव बुद्धिमत्ता के लिए प्रयुक्त किया है।

सबसे पहला रूपक, जो अन्ततः बाइबल में स्थापित हुआ, के अनुसार मनुष्यों की रचना मिट्टी या धूल से हुई थी जिसमें एक बुद्धिमान ईश्वर ने अपनी आत्मा प्रविष्ट करा दी। वह आत्मा हमारी बुद्धिमत्ता की व्याख्या करती है - कम-से-कम व्याकरण के लिहाज़ से।

ईसा पूर्व तीसरी सदी में हायड्रॉलिक इंजीनियरिंग के आविष्कार ने मानव बुद्धि के एक हायड्रॉलिक मॉडल को लोकप्रिय बनाया। विचार यह था कि शरीर में विभिन्न द्रवों - तथाकथित ह्यूमर्स - के प्रवाह के आधार पर हमारे शारीरिक व मानसिक, दोनों कार्यों की व्याख्या हो जाती है। हायड्रॉलिक रूपक 1600 से ज़्यादा वर्षों तक टिका रहा और पूरे समय चिकित्सा कार्य को पंगु बनाता रहा।

1500 के आसपास कमानियों (स्प्रिंग्स) और गेयरों से चलने वाले स्वचालित उपकरणों का जुगाड़ हो चुका था। इसने रेने देकार्त (René Descartes) जैसे प्रमुख विचारकों को यह कहने की प्रेरणा दी कि इन्सान जटिल मशीनें हैं। 1600 के दशक में ब्रिटिश दार्शनिक थॉमस हॉब्स ने सुझाया कि सोचना मस्तिष्क में छोटी-छोटी यांत्रिक गतियों का परिणाम होता है। 1700 आते-आते, विद्युत तथा रसायन शास्त्र के क्षेत्र में हुई खोजों ने मानव बुद्धि के नए सिद्धान्तों का मार्ग प्रशस्त किया - इस बार भी ये सिद्धान्त कमोबेश रूपकों के रूप में ही थे। 1800 के मध्य में संचार के क्षेत्र में हुई प्रगति से प्रेरित होकर जर्मन भौतिक शास्त्री हरमन फॉन हेल्महोट्ज़ ने मस्तिष्क की तुलना टेलीग्राफ से कर डाली।

गणितज्ञ जॉन फॉन न्यूमैन ने दोटूक शब्दों में कहा कि मानव तंत्रिका तंत्र का काम 'प्रथम दृष्टया डिजिटल' है। उन्होंने यह बात उस ज़माने की कंप्यूटिंग मशीनों के घटकों और मानव मस्तिष्क के घटकों की तुलना के आधार पर कही थी।

प्रत्येक रूपक उस युग के सर्वाधिक उन्नत सोच को प्रतिबिम्बित करता था। जैसी कि अपेक्षा थी, 1940 के दशक में कंप्यूटर टेक्नोलॉजी के आगाज़ के साथ ही कहा गया कि मानव मस्तिष्क कंप्यूटर के समान काम करता है। इसमें भौतिक हार्डवेयर की भूमिका तो स्वयं भेजा (brain) निभाता है जबकि हमारे विचार सॉफ्टवेयर का काम करते हैं। जिसे आज मोटे तौर पर 'संज्ञान शास्त्र' कहते हैं उसका प्रादुर्भाव मनोवैज्ञानिक जॉर्ज मिलर की पुस्तक *लैंग्वेज एंड कम्यूनिकेशन*

(भाषा और सम्प्रेषण, 1951) के प्रकाशन के साथ हुआ था। मिलर ने सुझाया था कि सूचना सिद्धान्त, कंप्यूटेशन और भाषा विज्ञान की अवधारणाओं का उपयोग करके मानसिक विश्व का गहन अध्ययन किया जा सकता है।

इस तरह की सोच की चरम अभिव्यक्ति एक छोटी-सी किताब *दी कंप्यूटर एंड दी ब्रेन* (कंप्यूटर और मस्तिष्क, 1958) में हुई। इसमें गणितज्ञ फॉन न्यूमैन ने दोटूक शब्दों में कहा कि मानव तंत्रिका का कार्य 'प्रथम दृष्टया डिजिटल' है। हालाँकि उन्होंने यह स्वीकार किया कि मानव तर्क और स्मृति में भेजे की भूमिका के बारे में ज़्यादा कुछ पता नहीं है मगर वे उस ज़माने की कंप्यूटिंग मशीनों के घटकों और मानव मस्तिष्क के घटकों के बीच एक के बाद एक समानताएँ बताने से नहीं चूके।

कंप्यूटर टेक्नोलॉजी और मस्तिष्क अनुसन्धान, दोनों में हुई प्रगति से प्रेरित होकर धीरे-धीरे मानव बुद्धिमत्ता को समझने का एक बहु-विषयी महत्वाकांक्षी प्रयास उभरा। इस प्रयास की जड़ें इस विचार में टिकी थीं कि कंप्यूटरों के समान मनुष्य भी सूचना प्रोसेसर्स हैं। इस प्रयास में आज हज़ारों अनुसन्धानकर्ता जुटे हैं और इसके लिए अरबों डॉलर की फंडिंग उपलब्ध है, और इसने विशाल साहित्य का सृजन किया है जिसमें तकनीकी आलेख भी हैं और लोकप्रिय आलेख व पुस्तकें भी हैं। रे कुर्ज़वाइल की पुस्तक *हाऊ टु क्रिएट ए माइंडः दी सीक्रेट ऑफ ह्यूमन थॉट रिवील्ड* (दिमाग की रचना कैसे करें: मानव सोच के राज़ का खुलासा, 2013) इस परिप्रेक्ष्य का एक अच्छा उदाहरण है। इसमें अटकलें लगाई गई हैं कि मस्तिष्क के 'एल्गोरिद्म' क्या हैं, वह 'डेटा को प्रोसेस' कैसे करता है और यहाँ तक कि कैसे मस्तिष्क की सतही संरचना इंटीग्रेटेड सर्किट से मेल खाती है।

IP रूपक की दिक्कतें

मानव बुद्धिमत्ता का सूचना प्रोसेसिंग (IP) रूपक आजकल मानव सोच पर हावी है - गली-नुक्कड़ों पर भी और विज्ञान में भी। इन्सान के बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार सम्बन्धी लगभग कोई भी बातचीत इस रूपक को लागू किए बगैर आगे नहीं बढ़ती। यह ठीक वैसा ही है जैसे किसी समय व कतिपय संस्कृतियों में मानव बुद्धिमत्ता की बातें किसी आत्मा अथवा दैवीय शक्ति का हवाला दिए बगैर पूरी नहीं होती थीं। आजकल IP रूपक की वैधता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है।

अलबत्ता, IP रूपक भी अन्ततः एक रूपक है - एक ऐसी कहानी है जो हम तब सुनाते हैं जब हम वास्तव में किसी चीज़ को समझते नहीं। और अपने से पहले के सारे रूपकों के समान कभी-न-कभी IP रूपक को भी दरकिनार कर दिया जाएगा - या तो इसका स्थान कोई अन्य रूपक ले लेगा या अन्ततः वास्तविक ज्ञान इसकी

जगह ले लेगा।

करीब एक साल पहले दुनिया भर के एक प्रतिष्ठित शोध संस्थान में मैंने शोधकर्ताओं को चुनौती दी कि वे मानव बुद्धिमत्ता की व्याख्या IP रूपक के किसी भी पहलू का हवाला दिए बगैर करें। वे ऐसा नहीं कर पाए, और जब मैंने बाद में ईमेल संवाद के दौरान विनम्रतापूर्व इस मुद्दे को उठाया तो कई महीनों बाद भी उनके पास कहने को कुछ नहीं था। उन्होंने समस्या तो पहचान ली। उन्होंने इस चुनौती को मामूली बताकर खारिज नहीं किया मगर वे कोई विकल्प नहीं सुझा सके। दूसरे शब्दों में, IP रूपक चिपकू है। यह हमारे सोच को ऐसी भाषा और विचारों से लाद देता है कि हमारे लिए उन्हें छोड़कर सोचना मुश्किल होता है।

IP रूपक के त्रुटिपूर्ण तर्क को व्यक्त करना बहुत आसान है। यह एक त्रुटिपूर्ण तर्क (syllogism) पर टिका है - ऐसा तर्क जिसकी मूल्य मान्यताएँ तो उपयुक्त होती हैं मगर निष्कर्ष गलत होता है।

- तर्कसंगत मान्यता क्र.1: सारे कंप्यूटर बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार में समर्थ होते हैं।
- तर्कसंगत मान्यता क्र.2: सारे कंप्यूटर सूचना प्रोसेसर होते हैं।
- गलत निष्कर्ष: बुद्धिमत्ता पूर्ण व्यवहार में समर्थ सारी इकाइयाँ (हस्तियाँ) सूचना प्रोसेसर होती हैं।

औपचारिक भाषा को छोड़ दें, तो यह विचार मूर्खतापूर्ण है कि मनुष्यों को मात्र इस बिला पर सूचना प्रोसेसर होना चाहिए कि कंप्यूटर सूचना प्रोसेसर होते हैं। और जब एक दिन IP रूपक को तिलांजलि दे दी जाएगी, तब इतिहासकार निश्चित रूप से इसे भी उसी नज़रिए से देखेंगे जैसे आज हम हायड्रॉलिक व यांत्रिक रूपकों को मूर्खतापूर्ण मानते हैं।

यदि IP रूपक इतना मूर्खतापूर्ण है, तो यह इतना चिपकू क्यों है? हम इसे क्यों नहीं सरकाकर एक तरफ कर देते हैं, जैसे रास्ता रोकने वाली किसी डाली को हटा देते हैं? क्या एक कमज़ोर बौद्धिक बैसाखी के सहारे के बगैर मानव बुद्धि को समझना सम्भव है? और इतने लम्बे समय तक इस बैसाखी के सहारे की हमने क्या कीमत चुकाई है? आखिरकार, IP रूपक कई दशकों से बड़ी संख्या में शोधकर्ताओं और लेखकों की सोच को निर्देशित करता रहा है। किस कीमत पर?

तो आखिर मस्तिष्क में यादें कैसे जमा होती हैं?

कई वर्षों से मैं कक्षा में एक अभ्यास करवाता रहा हूँ। इसमें मैं किसी छात्र को एक डॉलर के नोट की बारीकियों से भरी, यथासम्भव ज़्यादा-से-ज़्यादा बारीकियों से भरी, तस्वीर बनाने को कहता हूँ। यह तस्वीर वह पूरी कक्षा के सामने ब्लैकबोर्ड पर बनाता/ती है। जब छात्र यह काम पूरा कर लेता/ती है तो मैं तस्वीर को एक कागज़ से

चित्र-1

ढँक देता हूँ, जेब से डॉलर का नोट निकालता हूँ और उसे ब्लैकबोर्ड पर चिपका देता हूँ। अब छात्र से वही काम दोहराने को कहता हूँ। जब वह पूरा कर लेता/ती है तो मैं पहली तस्वीर पर से कागज़ हटा देता हूँ और कक्षा उन दो तस्वीरों के अन्तरों पर टिप्पणी करती है।

चूँकि आपने इस तरह का डिमॉन्स्ट्रेशन पहले नहीं देखा होगा या शायद आपको इसके नतीजे की कल्पना करना मुश्किल लगे, इसलिए मैंने अपने संस्थान की एक छात्र जिनी ह्यून से ऐसे दो चित्र बनाने को कहा। चित्र-1 है उस छात्र का 'याददाश्त आधारित' चित्र (रूपक पर ध्यान दीजिए)। और चित्र-2 है वो चित्र जो उसने बाद में डॉलर का नोट देखकर बनाया था।

परिणाम देखकर जिनी भी उतनी ही अचम्भित थी, जितने कि शायद आप होंगे, मगर यह आम बात है।

चित्र-2

जैसा कि आप देख सकते हैं, डॉलर नोट को देखकर बनाए गए चित्र की तुलना में डॉलर नोट की अनुपस्थिति में बनाया गया चित्र एकदम रद्दी है, जबकि जिनी ने डॉलर का नोट हज़ारों बार देखा होगा।

दिक्कत क्या है? क्या हमारे दिमाग के 'स्मृति रजिस्टर' में डॉलर नोट 'भण्डारित' नहीं है? क्या हम उसे 'पुनःप्राप्त' करके अपना चित्र बनाने में उसका उपयोग नहीं कर सकते?

ज़ाहिर है नहीं कर सकते, और तंत्रिका विज्ञान हज़ारों सालों में भी मानव मस्तिष्क में भण्डारित डॉलर के नोट के निरूपण को खोज नहीं पाएगा। कारण सीधा-सा है - ऐसा कोई निरूपण है ही नहीं।

यह विचार बेतुका है कि स्मृतियाँ अलग-अलग तंत्रिकाओं में सहेजी जाती हैं: कोशिका के अन्दर स्मृतियाँ कैसे व कहाँ सहेजी जाती हैं?

मस्तिष्क के तमाम अध्ययन बताते हैं कि कई बार याद रखने के छोटे-से काम में भी मस्तिष्क के एक से अधिक और बड़े-बड़े क्षेत्र शामिल होते हैं। जब तीव्र भावनाएँ शामिल होती हैं तो हो सकता है कि करोड़ों तंत्रिकाएँ अधिक सक्रिय हो जाएँ। टोरंटो विश्वविद्यालय के तंत्रिका-मनोविज्ञानी ब्रायन लेवाइन और अन्य ने 2016 में एक विमान दुर्घटना से जीवित बचे लोगों पर एक अध्ययन किया था। इसमें दुर्घटना को याद करते समय यात्रियों के मस्तिष्क के 'एमिग्डेला,

मीडियल टेम्पोरल लोब, एंटीरियर और पोस्टीरियर मिडलाइन और विज़ुअल कॉर्टेक्स' आदि क्षेत्रों में बढ़ी हुई तंत्रिका गतिविधि देखी गई।

कई वैज्ञानिकों ने यह विचार रखा है कि विशिष्ट यादें अलग-अलग तंत्रिका कोशिकाओं में सहेजी जाती हैं। यह विचार बेतुका है; यह दावा समस्या को और अधिक चुनौतीपूर्ण बना देता है: सवाल यह हो जाता है कि स्मृतियों को कोशिका में कैसे व कहाँ भरकर रखा जाता है?

तो जब जिनी डॉलर नोट की अनुपस्थिति में उसका चित्र बनाती है, तो होता क्या है? यदि जिनी ने कभी डॉलर का नोट न देखा होता, तो शायद पहला चित्र दूसरे से बिलकुल भी मेल न खाता। अर्थात् डॉलर का नोट देखने की वजह से जिनी में कुछ परिवर्तन तो आया है। ज़्यादा विशिष्ट रूप से कहें, तो उसके दिमाग में ऐसा कुछ परिवर्तन हुआ है कि वह डॉलर के नोट की दृश्य-संकल्पना कर सकती है - अर्थात् वह डॉलर के नोट को देखकर उसे पुनः अनुभव कर सकती है, कम-से-कम कुछ हद तक।

दो चित्रों के बीच अन्तर हमें याद दिलाते हैं कि किसी वस्तु की दृश्य-संकल्पना (यानी उसकी अनुपस्थिति में उसे देख पाना) कहीं कम सटीक होती है बनिस्बत किसी वस्तु को प्रत्यक्ष देख पाने के। इसीलिए हम याद करने की बजाय पहचानने में ज़्यादा दक्ष होते हैं। जब हम किसी चीज़ को *re-member करते हैं* (लेटिन *re* यानी फिर से, और *memorari यानी ध्यान देना),* तो हमें किसी अनुभव को फिर से जीने की कोशिश करनी पड़ती है; मगर जब हम किसी चीज़ को पहचानते हैं तो हमें मात्र इस बात के प्रति सचेत रहना होता है कि हमें यह इन्द्रियगत अनुभव पहले भी हो चुका है।

शायद आप इस डिमॉन्सट्रेशन के उद्देश्य पर आपत्ति करेंगे। जिनी ने डॉलर का नोट पहले देखा था, मगर उसने इसकी बारीकियों को 'याद' रखने की सायास कोशिश नहीं की थी। आप कह सकते हैं कि यदि उसने ऐसा किया होता तो शायद वह डॉलर का नोट देखे बगैर ही दूसरा वाला चित्र बना देती। अलबत्ता, इस मामले में भी यह नहीं कहा जा सकता कि डॉलर के नोट की कोई छवि जिनी के मस्तिष्क में 'भण्डारित' हुई है। वह उसका सटीक चित्र बनाने के लिए बेहतर ढंग से तैयार हो गई है, बस। ठीक उसी तरह जैसे कोई पियानो वादक रियाज़ कर-करके संगीत रचना का लिखित कागज़ देखे बगैर ही किसी कार्यक्रम में वादन में ज़्यादा दक्ष हो जाता है।

एक रूपक-मुक्त समझ

इस सरल-से अभ्यास के आधार पर हम मनुष्यों के बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार का एक रूपक-मुक्त ढाँचा बनाने की शुरुआत कर सकते हैं - एक ऐसा ढाँचा जिसमें दिमाग पूरी तरह खाली

नहीं है, मगर कम-से-कम IP रूपक की गठरी से मुक्त है।

जब हम दुनिया में विचरते हैं, तो कई विविध अनुभव हमें बदलते हैं। तीन किस्म के अनुभव विशेष रूप से गौरतलब हैं:

- आसपास जो कुछ होता है (लोगों का व्यवहार, संगीत की ध्वनियाँ, हमसे मुखातिब निर्देश, पन्नों पर शब्द, पर्दों पर तस्वीरें) हम उसका अवलोकन करते हैं;
- हमारा सम्पर्क कुछ महत्वहीन उद्दीपनों (जैसे सायरन) और महत्वपूर्ण उद्दीपनों (जैसे पुलिस की गाड़ियों का प्रकट होना) की जोड़ियों से होता है;
- हमें कुछ व्यवहारों के लिए तरह-तरह के दण्ड और पारितोषिक मिलते हैं।

यदि हम इस तरह बदलते हैं कि वह इन अनुभवों के साथ सुसंगत हो, तो हम जीवन में अधिक प्रभावी हो जाते हैं - जैसे, यदि अब हम कोई कविता या गीत सुना सकते हैं, यदि हम दिए गए निर्देशों का पालन कर सकते हैं, यदि हम महत्वहीन उद्दीपनों पर उसी तरह की प्रतिक्रिया देने लगते हैं जैसी हम महत्वपूर्ण उद्दीपनों पर देते हैं, यदि हम उस तरह का व्यवहार नहीं करते जिसे दण्डित किया जाता है, यदि हम ज़्यादा समय ऐसा व्यवहार करते हैं जिसके लिए पारितोषिक मिलता है।

गुमराह करने वाली सुर्खियाँ कुछ भी कहें, मगर किसी को तनिक भी अन्दाज़ नहीं है कि जब हम कोई गीत गाना या कविता सुनाना सीख जाते हैं तो हमारे मस्तिष्क में क्या परिवर्तन होते हैं। मगर न तो गाना, और न ही कविता मस्तिष्क में 'भण्डारित' होती है। मस्तिष्क कुछ ऐसे व्यवस्थित ढंग से बदल गया है जो हमें कुछ खास परिस्थितियों में गीत गाने या कविता सुनाने की गुंजाइश प्रदान करता है। जब हमें इनका प्रदर्शन करने को कहा जाता है तो इन्हें किसी भी अर्थ में मस्तिष्क में कहीं से 'पुनःप्राप्त' नहीं किया जाता, ठीक उसी तरह जैसे जब मैं अपनी उंगलियों को मेज़ पर थपथपाता हूँ, तो उंगलियों की हरकत कहीं से 'पुनःप्राप्त' नहीं की जाती। हम तो बस गाते-सुनाते हैं - पुनःप्राप्ति की कोई ज़रूरत नहीं है।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय के तंत्रिका वैज्ञानिक एरिक केंडल को एप्लिसिया (एक समुद्री घोंघे) में ऐसे रासायनिक परिवर्तनों की खोज के लिए नोबेल पुरस्कार मिला था जो उस समय होते हैं जब वह कुछ सीख लेता है। कुछ वर्ष पहले मैंने केंडल से पूछा था कि यह समझने में कितना वक्त और लगेगा कि मनुष्य की स्मृति कैसे काम करती है। उन्होंने तपाक से जवाब दिया था, "लगभग सौ साल।" मैंने उनसे यह पूछने की नहीं सोची कि क्या उनको लगता है कि IP रूपक तंत्रिका विज्ञान की रफ्तार को धीमा

कर रही है, मगर कुछ तंत्रिका वैज्ञानिक सचमुच अकल्पनीय के बारे में सोचने लगे हैं - कि यह रूपक अपरिहार्य नहीं है (कि इस रूपक के बगैर भी काम चल सकता है)।

चन्द संज्ञान वैज्ञानिक - खास तौर से *रैडिकल एम्बॉडीड कॉग्निटिव साइन्सेज़* (2009) के लेखक सिनसिनाटी विश्वविद्यालय के एंथनी केमेरो - आजकल इस मत को पूरी तरह खारिज करने लगे हैं कि मानव मस्तिष्क कंप्यूटर की तरह काम करता है। मुख्यधारा में प्रचलित मत यह है कि हम विश्व के मानसिक निरूपणों पर गणनाएँ करके उसके बारे में समझ बनाते हैं। मगर केमेरो और अन्य ने बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार का एक अन्य विवरण प्रस्तुत किया है - वे इसे किसी जीव और उसकी दुनिया के बीच सीधी अन्तर्क्रिया के रूप में देखते हैं।

कोई बेसबॉल खिलाड़ी उछलती हुई गेंद को लपकने में कैसे सफल हो जाता है - इसकी व्याख्या करने के दो अलग-अलग ढंग हैं और यह मेरा प्रिय उदाहरण है जिसके द्वारा दो नज़रियों के बीच अन्तर स्पष्ट हो जाता हैः IP नज़रिया और वह नज़रिया जिसे कुछ लोग अब मानव क्रियाकलाप का 'गैर-निरूपण आधारित' मत कहते हैं। इसे माइकल मैकबीथ (आजकल एरिज़ोना स्टेट विश्वविद्यालय में हैं) और उनके साथियों ने 1995 में *साइन्स* में प्रकाशित अपने पर्चे में सुन्दर ढंग से पेश किया था। IP नज़रिए की दरकार होगी कि खिलाड़ी पहले गेंद की उछाल की विभिन्न शुरुआती परिस्थितियों का एक अनुमान लगाए - उस पर लगाए गए बल का असर, उसके उछाल पथ का कोण, वगैरह - उसके बाद एक आन्तरिक मॉडल बनाए और विश्लेषण करे कि गेंद की किस ओर गति करने की सम्भावना है, फिर इस मॉडल का उपयोग करके यह निर्धारित करे कि उसकी अपनी क्रियात्मक गति क्या होनी चाहिए ताकि वह गेंद को पकड़ सके।

यदि हम कंप्यूटरों की तरह काम करते होते तो यह बढ़िया है। मगर मैकबीथ और उनके साथियों ने इस घटना का एक ज़्यादा सरल विवरण प्रस्तुत किया हैः गेंद को पकड़ने के लिए खिलाड़ी को सिर्फ इतना करना है कि कुछ इस तरह से गति करे कि गेंद होम प्लेट और आसपास के नज़ारे के सापेक्ष एक स्थिर दृश्य सम्बन्ध में रहे (तकनीकी भाषा में गेंद 'रैखीय प्रकाशीय पथ' पर बनी रहना चाहिए)। यह जटिल लगता है मगर वास्तव में यह अत्यन्त सरल है और किसी भी गणना, निरूपण या एल्गोरिद्म से मुक्त है।

हमें इस बात की चिन्ता करने की बिलकुल ज़रूरत नहीं है कि मानव मस्तिष्क सायबरस्पेस में भटक जाएगा, या हम डाउनलोडिंग के ज़रिए अमरत्व प्राप्त कर लेंगे।

यू.के. में लीड्स बेकेट विश्वविद्यालय के दो दृढ़-निश्चयी मनोवैज्ञानिक एंड्रयू

विल्सन और सेब्रिना गोलोंका बेसबॉल व ऐसे अन्य उदाहरणों की बात करते हैं जिन्हें IP ढाँचे के बाहर ज़्यादा सरलता और समझदारी से देखा जा सकता है। वे बरसों से अपने ब्लॉग पर 'मानव व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन के ज़्यादा सुसंगत, प्रकृतिस्थ तरीके' के बारे में लिख रहे हैं जो 'संज्ञान तंत्रिका विज्ञान पर हावी तरीके' के विरुद्ध है। अलबत्ता, यह कोई आन्दोलन नहीं बना है; मुख्यधारा का संज्ञान विज्ञान आज भी बगैर सोचे-समझे IP रूपक में लथपथ है और विश्व के कुछ प्रभावशाली विचारक मानवता के भविष्य के बारे में बड़ी-बड़ी भविष्यवाणियाँ कर रहे हैं, जो इस रूपक की वैधता पर टिकी हैं।

भविष्यवेत्ता कुर्ज़वाइल, भौतिक शास्त्री स्टीफन हॉकिंग, तंत्रिका वैज्ञानिक रैंडल कीन व अन्य ने एक भविष्यवाणी यह की है कि चूँकि कथित रूप से मानव चेतना कंप्यूटर सॉफ्टवेयर के समान है, तो जल्दी ही यह सम्भव हो जाएगा कि मानव मस्तिष्कों को एक कंप्यूटर पर डाउनलोड किया जा सकेगा, जिसके परिपथों में हम बौद्धिक रूप से अत्यन्त शक्तिशाली हो जाएँगे और बहुत सम्भव है कि अमर हो जाएँगे। इस अवधारणा से प्रेरित होकर हादसा फिल्म ट्रांसेंडेन्स (2014) बनी थी जिसमें जॉनी डेप ने कुर्ज़वाइलनुमा वैज्ञानिक की भूमिका अदा की थी। इस वैज्ञानिक का मस्तिष्क इंटरनेट पर डाउनलोड कर लिया जाता है - और परिणाम मानवता के लिए घातक साबित होते हैं।

हर मस्तिष्क अनोखा

खुशकिस्मती से, चूँकि IP रूपक तनिक-सा भी जायज़ नहीं है, इसलिए हमें कभी यह चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी कि मानव मस्तिष्क सायबरस्पेस में भटक जाएगा; हमें तो डाउनलोडिंग के ज़रिए अमरत्व की चिन्ता करने की ज़रूरत भी नहीं है। यह सिर्फ इस कारण से नहीं है कि मस्तिष्क में किसी चेतना सॉफ्टवेयर का कोई वजूद नहीं है; इस सन्दर्भ में एक ज़्यादा गहरी समस्या है - इसे अनोखेपन की समस्या कह सकते हैं - जो प्रेरणादायक भी है और मायूसीजनक भी है।

चूँकि मस्तिष्क में न तो 'स्मृति कोश' (memory banks) का अस्तित्व है, ना ही उद्दीपनों के 'निरूपण' का अस्तित्व है, और चूँकि दुनिया में काम करने के लिए हमारे लिए इतना ही ज़रूरी है कि हमारा मस्तिष्क हमारे अनुभवों के परिणामस्वरूप एक व्यवस्थित ढंग से बदले, तो यह मानने का कोई कारण नहीं कि हममें से कोई भी दो लोग एक ही अनुभव से एक-जैसे बदलेंगे। यदि आप और मैं एक संगीत कार्यक्रम में जाते हैं तो जब बीथोवन की पाँचवीं सिम्फनी सुनते हैं तो मेरे मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तन आपके मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तनों से सर्वथा भिन्न होंगे। वे परिवर्तन कुछ भी हों वे पहले से मौजूद अनूठी तंत्रिका संरचना पर निर्मित होते हैं।

और प्रत्येक संरचना जीवन भर के अनूठे अनुभवों के आधार पर विकसित होती है।

इसी वजह से, जैसा कि सर फ्रेडरिक बार्टलेट ने अपनी पुस्तक *रीमेम्बरिंग* (1932) में दर्शाया है, कोई भी दो व्यक्ति उनके द्वारा एक ही ढंग से सुनी गई कहानी को दोहरा नहीं पाएँगे। और इसीलिए एक ही कहानी का उनका पाठ अधिक-से-अधिक अलग-अलग होता जाएगा। किसी कहानी की 'नकल' कभी नहीं बनती। वास्तव में कहानी सुनने के बाद प्रत्येक व्यक्ति कुछ हद तक बदलता है - इतना बदलता है कि जब बाद में (कभी-कभी कई दिनों, महीनों या शायद वर्षों बाद) उनसे उस कहानी के बारे में पूछा जाता है, तो वे कुछ हद तक कहानी सुनने का पुनः अनुभव कर सकते हैं, मगर बहुत अच्छी तरह नहीं (डॉलर के नोट की प्रथम तस्वीर देखिए)।

मेरे ख्याल में यह प्रेरणास्पद है क्योंकि इसका मतलब है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति अनोखा है, सिर्फ अपनी जेनेटिक बनावट में नहीं बल्कि समय के साथ हम जिस ढंग से बदलते हैं उस सन्दर्भ में भी। यह मायूसीजनक भी है क्योंकि यह तंत्रिका वैज्ञानिक के काम को लगभग अकल्पनीय हद तक कठिन बना देता है। किसी भी अनुभव के लिए व्यवस्थित परिवर्तनों में मस्तिष्क की हज़ारों या लाखों तंत्रिकाएँ शामिल हो सकती हैं और इसका पैटर्न हर मस्तिष्क में अलग-अलग होगा।

उससे भी बड़ी दिक्कत यह है कि यदि हमारे पास मस्तिष्क की 86 अरब तंत्रिकाओं की तस्वीर खींचने की क्षमता हो और यह भी क्षमता हो कि हम उन तंत्रिकाओं की स्थिति को एक कंप्यूटर में प्रतिरूपित कर सकें, तो भी उस विशाल पैटर्न का उसे पैदा करने वाले मस्तिष्क के बाहर कोई अर्थ नहीं होगा। जिस ढंग से IP रूपक ने मानव कामकाज के बारे में हमारी सोच को विकृत किया है, यह शायद उसका सबसे खतरनाक पक्ष है। जहाँ कंप्यूटर डेटा की एकदम सटीक प्रतिलिपि का भण्डारण करते हैं - ऐसी प्रतिलिपियाँ जो लम्बे समय तक अपरिवर्तित पड़ी रह सकती हैं, चाहे बिजली गुल हो जाए - मस्तिष्क हमारी बुद्धि को तब तक ही सहेज सकता है जब तक कि वह जीवित है। उसमें कोई बन्द-चालू का स्विच नहीं होता। या तो मस्तिष्क काम करता रहता है या हम नदारद हो जाते हैं। और तो और, जैसे कि तंत्रिका-जीव वैज्ञानिक स्टीवन रोस ने अपनी पुस्तक *दी फ्यूचर ऑफ दी ब्रेन* (2005) में बताया है, मस्तिष्क की वर्तमान स्थिति की तस्वीर भी निरर्थक ही होगी जब तक कि हमें मस्तिष्क के स्वामी का पूरा जीवन-चरित न मालूम हो - शायद हमें उस सामाजिक परिवेश की भी जानकारी होनी चाहिए जिसमें उसकी परवरिश हुई थी।

ज़रा सोचिए, कितनी मुश्किल

समस्या है। सिर्फ इतना जानने के लिए कि मानव मस्तिष्क बुद्धि को कैसे सहेजकर रखता है, हमें 86 अरब तंत्रिकाओं और उनकी 100 खरब कड़ियों की वर्तमान स्थिति पता होनी चाहिए। हमें यह भी पता होना चाहिए कि ये कड़ियाँ कितनी मज़बूत हैं और उन 1000 प्रोटीन्स के बारे में भी पता होना चाहिए जो हर कड़ी में उपस्थित होते हैं। और इतने से काम नहीं चलेगा। हमें पता होना चाहिए कि मस्तिष्क की पल-दर-पल गतिविधि कैसे तंत्र की समग्रता में योगदान देती है। और इसमें प्रत्येक मस्तिष्क का अनोखापन और जोड़ लीजिए जो कुछ हद तक हरेक व्यक्ति के जीवन-चरित से पैदा होता है। इस सबके बाद कैंडल की भविष्यवाणी अति-आशावादी लगती है। हाल ही में *दी न्यू यॉर्क टाइम्स* के एक लेख में तंत्रिका वैज्ञानिक केनेथ मिलर ने कहा है कि मात्र बुनियादी तंत्रिका कड़ियों को समझने में 'सदियाँ' लग जाएँगी।

इस सबके बीच, मस्तिष्क अनुसन्धान के लिए विशाल धन की उगाही हो रही है। कई मामलों में यह अनुसन्धान गलत विचारों पर आधारित है और ऐसे वायदों पर टिका है जिन्हें पूरा नहीं किया जा सकता। तंत्रिका विज्ञान के घोर भटकाव की एक बानगी हाल ही में *साइन्टिफिक अमेरिकन* की एक रिपोर्ट में दर्ज हुई है। इसका सम्बन्ध 1.3 अरब डॉलर के मानव मस्तिष्क प्रोजेक्ट से है जिसे युरोपीय संघ ने 2013 में शुरू किया था। करिश्माई हेनरी मार्करैम ने दावा किया कि वे 2023 तक एक सुपरकंप्यूटर पर समूचे मानव मस्तिष्क का प्रतिरूपण कर सकते हैं और यह मॉडल अल्ज़ीमर व अन्य रोगों के उपचार में क्रान्ति ला देगा। इससे प्रभावित होकर युरोपीय संघ के अधिकारियों ने उनके प्रोजेक्ट को लगभग बिना शर्त फण्ड उपलब्ध कराया। दो साल के अन्दर ही यह प्रोजेक्ट 'मस्तिष्क मलबे' में परिवर्तित हो गया और मार्करैम को हटने को कहा गया।

हम सजीव हैं, कंप्यूटर नहीं हैं। इस सबसे बाहर निकलिए। हमें स्वयं को समझने का कारोबार जारी रखना चाहिए, मगर अनावश्यक बौद्धिक कचरे के बोझ के बगैर। IP रूपक को आधी सदी का मौका मिला और इसने शायद ही कोई सूझबूझ पैदा की है। वक्त आ गया है कि डिलीट बटन को दबा दिया जाए।

रॉबर्ट एपस्टीन: कैलिफोर्निया स्थित *अमेरिकन इंस्टीट्यूट फॉर बिहेव्यरल रिसर्च एंड टेक्नोलॉजी* में वरिष्ठ अनुसन्धान मनोवैज्ञानिक हैं। वे 15 पुस्तकों के लेखक हैं और *सायकोलॉजी टुडे* के मुख्य सम्पादक रहे हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

यह लेख http://aeon.co/ के 18 मई, 2016 के पन्नों से साभार।